

पत्रकारिता का अर्थ सवालों को जिंदा रखना है

पत्रकारिता का अर्थ सिर्फ खबरें बताना नहीं है, बल्कि उन सवालों को जिंदा रखना है जिन्हें सत्ता भुला देना चाहती है। एक पत्रकार का काम माइक लेकर चिल्लाना नहीं, बल्कि चुप्पी में दबी हुई आवाजों को सुनना और सुनाना है। जब सत्ता के गलियारे में सत्ता हो और जनता के बीच शोर हो, तब पत्रकार का कर्तव्य है कि वह शोर के पीछे के कारण को खोजे। अच्छी पत्रकारिता सत्ता को असहज करती है, क्योंकि वह सुविधाजनक झूठ के बजाय असुविधाजनक सच को सामने लाती है। आज के दौर में जहाँ खबरें प्रोडक्ट बन गई हैं और एंकर अभिनेता, वहाँ ईमानदार पत्रकार का अकेला पड़ जाना स्वाभाविक है। लेकिन यही अकेलापन उसकी विश्वसनीयता है। पत्रकारिता अंततः लोकतंत्र की वह आखिरी उम्मीद है जो बताती है कि सच अभी मरा नहीं है, बस उसे खोजने वाला चाहिए। और यह खोज किसी पुरस्कार या टीआरपी के लिए नहीं, बल्कि इस भरोसे के लिए है कि किसी अनजान गाँव में बैठा एक नागरिक भी यह महसूस कर सके कि उसकी बात सुनी जा रही है। - रवीश कुमार



भ्रष्टाचार और फासी शक्तियों के विरुद्ध शंखनाद

नवयुग

R.N.I. No. 15990/67

संस्थापक संपादक: स्व. श्री चिरंजीव जोशी 'सरोज'

हिन्दी पाक्षिक

वर्ष-60 अंक-6

जयपुर, सोमवार, 31 अगस्त, 2026

मूल्य- 10 रुपए

पृष्ठ- 8

काठमांडू से 'नवयुग'
की विस्तृत रिपोर्ट

**विनाशकारी शुरुआत: 26
अगस्त की मनहूस सुबह**

नेपाल के इतिहास में यह दिन एक गहरे घाव के रूप में दर्ज हो गया है। हिमालय की शांत वादियों में अचानक आई भीषण बाढ़ ने देखते ही देखते पूरे परिदृश्य को मौत और तबाही के मंजर में बदल दिया। इस जल-प्रलय का मुख्य कारण चीन-नेपाल सीमा पर स्थित लांगटांग नेशनल पार्क क्षेत्र में एक विशाल ग्लेशियर का टूटना था। इस ग्लेशियर के गिरने से भारी मात्रा में बर्फ, मलबा और पानी त्रिशूली और अन्य सहायक नदियों में आ गिरा। नदियों का जलस्तर कुछ ही मिनटों में दर्जनों फीट बढ़ गया, जिसने रास्ते में आने वाले हर ढाँचे, गाँव और जंगल को निगल लिया।

**जन-धन की अभूतपूर्व
क्षति**

बाढ़ का वेग इतना प्रचंड था कि उसने रसुवा, नुवाकोट, धादिंग, और चितवन जैसे जिलों का भूगोल ही बदल दिया। अब तक 620 से अधिक लोगों के मारे जाने की आधिकारिक पुष्टि हो चुकी है। वहीं, हजारों लोग अभी भी लापता हैं। कई इलाकों में स्थिति इतनी खराब है कि मृतकों के लिए सैकड़ों कब्रें खोदी गई हैं और शवों को एक साथ



दफनाया जा रहा है ताकि महामारी फैलने से रोकी जा सके।

हाइड्रोपावर प्रोजेक्ट्स में

तबाही:

नेपाल की कई प्रमुख पनबिजली (हाइड्रोपावर)

परियोजनाएं पूरी तरह से ध्वस्त हो गई हैं। बाढ़ के पानी और मलबे के कारण इन प्रोजेक्ट्स की सुरंगों

(टनल) में करीब 1000 जिंदगियां फंसी हुई हैं, जिससे स्थिति और भी भयावह हो गई है। भारत के सहयोग

से इन फंसे हुए नागरिकों को निकालने के लिए प्रयत्न जारी हैं।

शेष भाग पृष्ठ 2 पर

ये कहाँ आ गए हम..

भारतीय राजनीति का नया दौर: मानवीय रिश्तों का अंतिम संस्कार!

इस पक्ष का विशेष संपादकीय विनोद जोशी द्वारा

कभी कभी एक चित्र बहुत कुछ कह जाता है। देश के दो पूर्व प्रधानमंत्रियों की अचानक उभर आई एक साझा तस्वीर ने फिर से हमें अपने अतीत में झाँकने का अवसर दिया है। स्व. इंदिरा गांधी और स्व. अटलबिहारी वाजपेयी अपने आप में एक इतिहास, परम्परा और मानवीय संवेदनाओं की अनकही कहानी कह जाती है। एक पूरे इतिहास से परिचय होने लगता है। इतिहास के पन्ने पलटने शुरू होते हैं.. पंडित नेहरू से होते हुए लाल बहादुर शास्त्री, इंदिरा गांधी, मोरारजी भाई देसाई, चौधरी चरण सिंह, राजीव गांधी, नरसिम्हा राव, अटल जी, मनमोहन सिंह को पार करते-करते जब वर्तमान राजनैतिक परिदृश्य पर पहुँचते हैं, तो एक झटका लगता है.. दिमाग सोचने को मजबूर करता है.. ये कहाँ आ गए हम! मानवीय रिश्तों की सुनहरी तस्वीर

कहीं चटक सी जाती है।

भारतीय राजनीति में वैचारिक मतभेदों और तीखी राजनीतिक बहसों के कई उदाहरण मिलते हैं। उन सबमें तीखे वार भी हुए.. कई बार मर्यादा टूटने की हद तक बहसें पहुंची थी.. कुछ एक अपवादों में मर्यादाओं का उल्लंघन भी हुआ। इन सबके बीच मानवीय रिश्तों की गर्माहट.. जरूरत की प्रतिध्वनि भी



पूरे शबाब के साथ गुंजती रही। स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जब अपने पहले मंत्रिमंडल का गठन किया, तो व्यवहार में भी इन्हीं रिश्तों को खुलेदिल से अपनाया भी। उनके मंत्रिमंडल में संविधान विशेषज्ञ डॉ. बी. आर. आंबेडकर विधि मंत्री थे, तो तत्कालीन हिंदू महासभा के अध्यक्ष डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी उद्योग और रसद विभाग के मंत्री

बने। कांग्रेस की धुर विरोधी जस्टिस पार्टी के आर. के. षण्मुखम चेट्टी वित्त मंत्री बने, अकाली दल के सरदार बलदेव सिंह रक्षा मंत्री थे, तो व्यावसायिक पृष्ठभूमि के सी. एच. भाभा वाणिज्य मंत्री बने। भाभा का कोई राजनीतिक या स्वतंत्रता आंदोलन से कोई लेना-देना नहीं था, सिर्फ देश को किसकी जरूरत है.. मुद्दा यही था। बाद में आए प्रधानमंत्रियों ने इस परंपरा को तमाम कटुताओं और विरोधाभासों के बीच बनाए रखा।

अटल जी का अपना अलग अंदाज था, जब विरोधियों पर निर्मम प्रहार करते थे, तब किसी की हिम्मत नहीं थी कि उन्हें टोक दे। लेकिन इस सब के ऊपर वे बेहद प्रेमभरे मानवीय गुणों से परिपूर्ण प्रधानमंत्री थे। जैसा कि उन्होंने खुद कहा था कि एक दिन पंडित नेहरू ने युवा

शेष भाग पृष्ठ 2 पर

प्रथम पृष्ठ का शेष भाग... भारतीय राजनीति का नया दौर

अटल जी को कहा था कि तुम एक दिन देश के प्रधानमंत्री बनोगे.. यह बात अटल जी ने स्वयं बताई-लिखी है। राजनीति से परे इंदिरा गांधी और राजीव गांधी से उनके आत्मीय रिश्ते थे। राजीव गांधी की उनके स्वास्थ्य को लेकर चिंता और उनके इलाज के लिए स्थापित परंपराओं को तोड़ने का किस्सा जगजाहिर है। नरसिम्हा राव ने अपने साथियों को दरकिनार कर प्रतिपक्ष के नेता अटलजी को संयुक्त राष्ट्र महासभा में भारत का पक्ष रखने का जिम्मा दिया। अटलजी ने राव को कई महत्वपूर्ण मुद्दों यथा आर्थिक सुधारों को लागू करने में सहयोग दिया, जबकि विरोधी पक्ष के नेता के तौर पर वे जानते थे कि कांग्रेस अल्पमत में है। नरसिंहा राव मजाक में उन्हें अपना राजनीतिक गुरु कहा करते थे। कहने का मतलब यह कि देश के राजनेता एक स्वस्थ लोकतंत्र के तौर पर सभी राजनेताओं के लिए सम्मान रखते थे।

अब आज के हाल

आज सत्ता पक्ष और विरोधी पक्ष के अधिकांश राजनेताओं के बीच सौहार्द खत्म हो चुका है। बहस संसद के अंदर कम और संसद के बाहर ज्यादा हो रही है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के 50 करोड़ की गर्लफ्रेंड

और कांग्रेस की जर्सी गाय के साथ मणिशंकर अय्यर के नीचे आदमी जैसे सुविचारों को कहीं पीछे छोड़ चुका है। संसद में भाजपा सांसदों की भाषा अपने आप में सबसे बड़ा उदाहरण है। जब सत्ता पक्ष की मानसिकता में गालियों की भरमार हो जाए, तो प्रतिपक्ष से कैसा सवाल? इस सबके जिम्मेदार दोनों ही पक्षों के राजनेता हैं.. फिर वे चाहे नरेंद्र मोदी हों या अमित शाह हों या राहुल गांधी! सोशल मीडिया पर फैली गंदगी ने तो राजनेताओं के गटर स्नान को नई ऊंचाइयां ही दे दी हैं! अमित मालवीय से शुरू हुआ सिलसिला अब कॉकरोच जनता पार्टी के आंदोलन में सत्ताधीशों को पड़ी नई पीढ़ी की गालियों ने नया आयाम ही दे दिया है! भले ही आज प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी बनाकर कहें कि उन्होंने जेन जी की उस लड़की को माफ कर दिया है; लेकिन हकीकत तो यही है कि बोया पेड़ बबूल का, तो आम कहां से होय। समय भारत के हर राजनेता को समझने और सोचने का है.. इस विधा में आपकी अगली पीढ़ी आपसे तो आगे ही होगी! फिर पश्चाताप न करें कि उन्होंने क्या किया और क्या करना चाहिए था?

बात इतिहास याने इस तस्वीर की!

लेकिन कभी-कभी इतिहास एक ऐसी छोटी-सी तस्वीर भी छोड़ जाता है, जो पूरी राजनीति से कहीं बड़ी कहानी कह देती है। यह तस्वीर 1972 की है। शिमला समझौते तो लेकर बहुत सी बातों पर विपक्ष को आपत्ति थी। तत्कालीन जनसंघ के नेता अटलबिहारी वाजपेयी ने संसद में अपनी बातें बेहद सख्त अंदाज में रखी थीं, वे इस समझौते के खिलाफ थे। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने उनसे बात करने का फैसला लिया और बातचीत के लिए आमंत्रित किया। दोनों ने कमरे में बैठकर बात करने के बजाय अनौपचारिक माहौल में बाहर घूमते हुए करने का निर्णय लिया। वे बाहर बात कर रहे थे, तभी अचानक बारिश आ गई, इंदिरा गांधी के स्टॉफ ने दौड़कर उनके हाथ में एक छाता दिया। इंदिरा जी ने छाता खोला और भारतीय राजनीति के उस दौर की एक बेहद खूबसूरत तस्वीर ने जन्म लिया!

इंदिरा गांधी ने छाता खोलकर अटल जी के सिर पर कर दिया। अटलजी अपनी धुन में इंदिराजी को अपनी बात कहते रहे और वे उनके सिर पर छाता लगाए सुनती रहीं। दोनों के बीच घनघोर वैचारिक मतभेद.. एक प्रधानमंत्री थीं तो दूसरे प्रतिपक्ष के बड़े नेता; लेकिन मानवीय संवेदनाएं, शिष्टता और सम्मान

का अनुपम उदाहरण बिना किसी प्रचार के झलक रहा था।

इस प्रसंग का उल्लेख बाद में वरिष्ठ भाजपा नेता एस. शेषाद्रि चारी ने एक टीवी कार्यक्रम में किया था। उनके अनुसार, उन्होंने इस तस्वीर के बारे में अटल जी से पूछा था और अटल जी ने उन्हें घटना का संदर्भ बताते हुए कहा था - राजनीति में विरोध हो सकता है, लेकिन विरोधी के प्रति सम्मान खत्म होना जरूरी नहीं। इन दोनों की राजनीति अलग-अलग विचारधाराओं की थी। दोनों ने एक-दूसरे की नीतियों का विरोध भी किया। लेकिन ऐसे प्रसंग बताते हैं कि उस दौर की राजनीति में व्यक्तिगत संवाद और संसदीय शिष्टाचार के लिए भी जगह थी। शायद इसीलिए वह छाता आज केवल बारिश से बचाने वाला छाता नहीं लगता, बल्कि वह भारतीय राजनीति के एक ऐसे दौर की तस्वीर बन गया है, जब राजनीतिक विरोध के बीच भी इंसानी रिश्तों की गर्माहट दिखाई देती थी। आज की राजनीति और इस चित्र के संदर्भ में देखें तो दिमाग यही कहता है.. ये कहां आ गए हम!

(चित्र एवं चित्रकथा संदर्भ - डॉ. के. एस. भारद्वाज)

प्रथम पृष्ठ का शेष भाग - नेपाल में जल प्रलय

भारतीय नागरिकों पर प्रभाव:

बाढ़ का असर केवल नेपाल तक सीमित नहीं रहा। भारत के सैकड़ों नागरिक फंसे हुए हैं, बहुत से लोगों से संपर्क अभी तक संभव नहीं हुआ है। दूरदराज गए पर्यटकों की सिर्फ आखिरी लोकेशन उनके मोबाइल फोन से हुए अंतिम संपर्कों से ही मालूम चल सकती है। बिहार के एक ही परिवार के 5 लोग इस त्रासदी में लापता हो गए हैं, जिनके परिजन अपनों की राह देख रहे हैं।

चमत्कारिक बचाव और खौफनाक मंजर

इस भीषण त्रासदी के बीच कुछ ऐसी घटनाएं भी सामने आईं, जो मानव की जिजीविषा और चमत्कार

का प्रमाण हैं-

900 स्कूली बच्चों की बची जान:

एक स्कूल में बाढ़ का पानी घुसने से महज 10 सेकंड पहले सभी 900 बच्चों को सुरक्षित निकाल लिया गया। एक चरमदीद ने बताया कि वे महज 10 सेकंड के अंतर से मौत के मुंह में जाने से बचे।

एक साड़ी ने बचाई 21 जिंदगियां:

वेलचिरी के एक दंपति और कैलाश मानसरोवर की यात्रा से लौट रहे 21 भारतीयों की जान एक साड़ी की मदद से बचाई गई। उफनती नदी और मलबे के बीच फंसे इन लोगों ने साड़ी को रस्सी की तरह इस्तेमाल कर एक-दूसरे को सुरक्षित स्थान तक खींचा।

वायरल ग्रीन हाउस:

तबाही के इस मंजर के बीच नेपाल का एक ग्रीन हाउस सोशल मीडिया पर वायरल हो रहा है। इसे दुनिया का सबसे मजबूत घर कहा जा रहा है, क्योंकि भीषण बाढ़ भी इसे अपनी जगह से हिला नहीं सकी।

युद्ध स्तर पर राहत एवं बचाव कार्य

नेपाली सेना और आपदा प्रबंधन प्राधिकरण ने संयुक्त रूप से इतिहास का सबसे बड़ा रेस्क्यू ऑपरेशन शुरू किया है। हेलीकॉप्टरों की

मदद से दुर्गम और बाढ़ से कटे हुए इलाकों में फंसे लोगों को लगातार निकाला जा रहा है।

सुरंगों में संघर्ष- हाइड्रोपावर टनल में फंसे 1000 लोगों को निकालने के लिए भारी मशीनों का इस्तेमाल किया जा रहा है। लगातार गिरते मलबे और खराब मौसम के कारण रेस्क्यू टीमों को भारी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

भारत और अंतरराष्ट्रीय सहयोग

पड़ोसी होने के नाते भारत ने फर्स्ट रेस्पॉन्डर की भूमिका निभाते हुए तत्काल सहायता भेजी है। भारतीय वायुसेना के विमानों के जरिए भारी मात्रा में दवाइयां, तंबू, स्लीपिंग बैग्स और भोजन काठमांडू पहुंचाया गया है। टनल में फंसे लोगों को निकालने के लिए भारत की विशेष माउंटेन रेस्क्यू टीम और फोरेंसिक विशेषज्ञ नेपाल पहुंच चुके हैं। टूटे हुए पुलों की जगह भारतीय सेना के इंजीनियर बेली ब्रिज (Bailey Bridges)

का निर्माण कर रहे हैं ताकि यातायात बहाल हो सके।

भविष्य की चिंताएं और जलवायु परिवर्तन

एक्सपर्ट्स ने चेतावनी दी है कि नेपाल में फिर से बाढ़ आने की आशंका बनी हुई है। विशेषज्ञ इस त्रासदी को सीधे तौर पर जलवायु परिवर्तन का परिणाम मान रहे हैं। ग्लोबल वार्मिंग के कारण हिमालय के ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं और नई ग्लेशियर झीलें बन रही हैं, जिनके फटने का खतरा हमेशा बना रहता है। इस घटना ने स्पष्ट कर दिया है कि हिमालई क्षेत्रों में बड़े हाइड्रोपावर प्रोजेक्ट्स और अनियंत्रित निर्माण भविष्य के लिए कितने खतरनाक साबित हो सकते हैं। फिलहाल सबसे बड़ी प्राथमिकता मलबे में दबी जिंदगियों को बचाना और बेघर हुए लाखों लोगों का पुनर्वास करना है।

नेपाल बाढ़: एक नजर

हताहतों की स्थिति

मृतक और लापता- इस भीषण आपदा में अब तक 788 से अधिक लोगों की मौत की पुष्टि हो चुकी है, जबकि 2,500 से ज्यादा लोग अभी भी लापता बताए जा रहे हैं।

घायल- 239 से अधिक घायल लोगों का विभिन्न अस्पतालों में उपचार चल रहा है या उन्हें प्राथमिक इलाज के बाद छुट्टी दे दी गई है।

डीएनए टेस्ट और शव पहचान के विशेष इंतजाम

डीएनए परीक्षण की अनिवार्यता- बाढ़ के पानी और कीचड़ में दिनों तक फंसे रहने के कारण कई शव बुरी तरह सड़ चुके हैं और उनकी पहचान करना नामुमकिन हो गया है। पोखरा जैसे स्थानों पर एक ही शव पर दो अलग-अलग परिवारों ने दावा पेश किया है। इस उलझन को सुलझाने के लिए डीएनए टेस्ट को अनिवार्य कर दिया गया है।

अस्थायी दफनाने की प्रक्रिया

तेजी से सड़ते शवों से बीमारियों के फैलने के खतरे को देखते हुए, नेपाल सरकार ने अज्ञात शवों को अस्थायी रूप से दफनाना शुरू कर दिया है। हालांकि, दफनाने से पहले हर शव का डीएनए सैंपल, फिंगरप्रिंट, कपड़े, और तस्वीरें अनिवार्य रूप से सुरक्षित रखी जा रही हैं।

कब्रों की जियो-टैगिंग- जिन अज्ञात शवों को दफनाया जा रहा है, उनकी कब्रों को एक विशेष पहचान नंबर दिया गया है और उनकी सटीक लोकेशन की जियो-टैगिंग की जा रही है। डीएनए टेस्ट के नतीजे आने के बाद, परिजनों से सैंपल का मिलान होने पर शव को वापस निकालकर उन्हें सौंपा जा सकेगा।

भारत की फोरेंसिक सहायता- इस बड़े पैमाने पर डीएनए विश्लेषण और शवों की पहचान प्रक्रिया को तेज करने के लिए, भारत ने अपनी 19 सदस्यीय विशेष फोरेंसिक टीम नेपाल भेजी है जो स्थानीय प्रशासन की मदद कर रही है।

इस वैज्ञानिक प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि बिना किसी संदेह के हर शव उसके सही परिवार तक पहुंच सके।



राजस्थान - जानिए स्थानीय चुनावों के बारे में

स्थानीय चुनावों का बिगुल बजा, भाजपा-कांग्रेस में मुकाबला

संवैधानिक पृष्ठभूमि

राजस्थान में स्थानीय निकायों के चुनाव लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण और जमीनी स्तर पर स्वशासन का मुख्य आधार हैं। भारतीय संविधान के 73वें और 74वें संशोधन (अनुच्छेद 243के) के तहत राज्य निर्वाचन आयोग का गठन किया गया था, जिसे पंचायतों और नगरपालिकाओं के चुनाव कराने की शक्तियां सौंपी गई हैं। यह आयोग भारत निर्वाचन आयोग से स्वतंत्र है और राज्य में चुनाव संपन्न कराने के लिए उत्तरदायी है।

राज्य निर्वाचन आयोग की भूमिका

राजस्थान में एक सदस्यीय राज्य निर्वाचन आयोग का नेतृत्व राज्य निर्वाचन आयुक्त करते हैं, जो मतदाता सूची तैयार करने और चुनाव आयोजित करने का संवैधानिक दायित्व निभाते हैं। पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव राज्य में 1960 से हो रहे हैं, लेकिन 1995 से इन चुनावों का संचालन स्वतंत्र रूप से राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा किया जा रहा है। इसी प्रकार, शहरी निकायों के चुनाव भी आयोग के दिशा-निर्देशन में होते हैं।

स्थानीय निकायों की संरचना

राजस्थान में लोकल बॉडीज को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया गया है-

शहरी स्थानीय निकाय- इसके अंतर्गत नगर निगम, नगर परिषद और नगर पालिकाएं आती हैं। वर्ष

2026 में प्रदेश के 309 शहरी निकायों के लिए चुनावी प्रक्रिया चल रही है, जिनमें 10 नगर निगम, 51 नगर परिषद और 248 नगर पालिकाएं शामिल हैं।

पंचायती राज संस्थाएं- इसके अंतर्गत ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद शामिल हैं। जिला प्रमुखों और पंचायत समिति सदस्यों के चुनाव

निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करना है।

आचार संहिता के दौरान सरकारी वाहनों के दुरुपयोग पर पूर्ण प्रतिबंध होता है।

सार्वजनिक और निजी संपत्तियों से राजनीतिक होर्डिंग्स, बैनर, पोस्टर और झंडे तय समय सीमा (24 से 72 घंटे) के भीतर हटाए जाने अनिवार्य होते हैं।

आरक्षण और 'रोटेशन' नीति

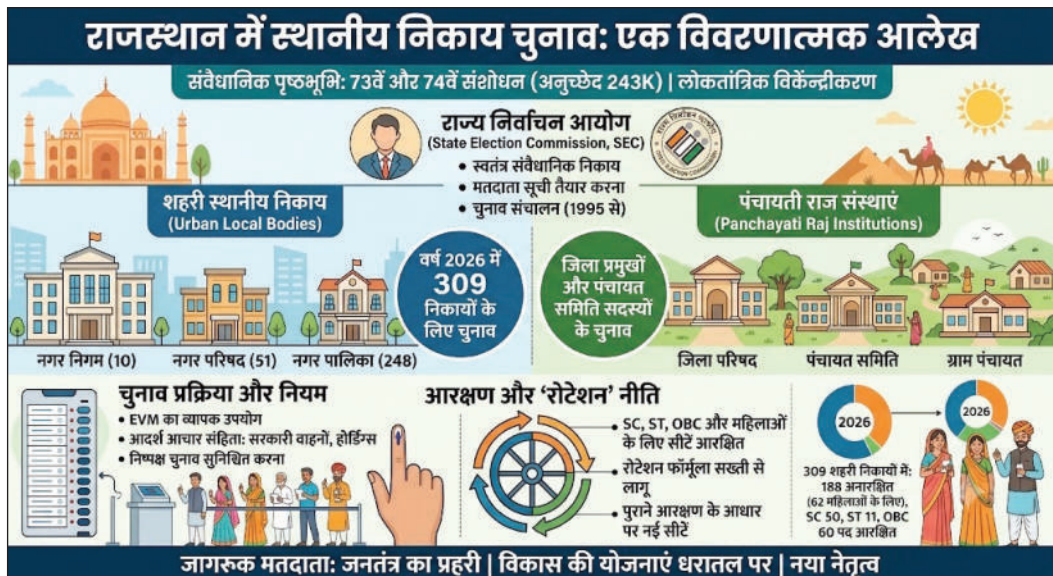
स्थानीय निकाय चुनावों में समाज के सभी वर्गों के प्रतिनिधित्व के लिए अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित की जाती हैं। 2026 के चुनावों में राज्य निर्वाचन आयोग ने सीट आरक्षण के लिए रोटेशन फॉर्मूले को सख्ती से लागू किया है। इस नीति के तहत, वर्ष 2014 और 2019-20 के चुनावों में जो सीटें SC या ST वर्ग के लिए आरक्षित थीं, उन्हें इस बार की आरक्षण सूची से बाहर रखा गया है।

309 शहरी निकायों में से 188 पद अनारक्षित रखे गए हैं, जिनमें से 62 पद महिलाओं के लिए हैं।

इसके अलावा SC के लिए 50 पद, ST के लिए 11 पद और OBC के लिए 60 पद आरक्षित किए गए हैं।

आरक्षण की यह रोटेशन व्यवस्था पुराने सियासी समीकरणों को बदलकर नए उम्मीदवारों के लिए अवसर पैदा करती है।

राजस्थान में स्थानीय निकायों के चुनाव न केवल विकास की योजनाओं को धरातल पर उतारने का माध्यम हैं, बल्कि यह जागरूक मतदाता जनतंत्र का प्रहरी की भावना को भी साकार करते हैं। हर पांच साल में होने वाले ये चुनाव राज्य की राजनीतिक दिशा और स्थानीय नेतृत्व को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।



भी एक व्यवस्थित ढांचे के तहत संपन्न कराए जाते हैं।

वुनाव प्रक्रिया और आदर्श आचार संहिता

चुनावों की घोषणा के साथ ही प्रदेश में आदर्श आचार संहिता लागू हो जाती है, जिसका मुख्य उद्देश्य

मतदान के लिए इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (श्वङ्कू) का व्यापक उपयोग किया जाता है, जिसके लिए आयोग द्वारा विस्तृत दिशा-निर्देश जारी किए जाते हैं।

भाजपा ने 115 और कांग्रेस ने 72 पार्षदों के टिकट काटे

82.8 फीसदी वर्तमान पार्षदों को नहीं मिला पार्टी टिकट

नए वार्ड नंबरों में बदलाव हुआ है। इस तरह 250 में सिर्फ 17.2% टिकट हासिल कर सके।

वार्डों के परिसीमन का प्रभाव

जयपुर ग्रेटर और हेरिटेज को एक कर वार्डों के परिसीमन और पुनर्गठन के कारण पुराने और नए वार्ड नंबरों के साथ उनके भौगोलिक समीकरण पूरी तरह बदल गए हैं। कई पुराने पार्षदों के मजबूत वोट बैंक

वाले क्षेत्र अन्य वार्डों में चले गए, जिससे उनका दावा कमजोर हो गया।

पांच साल के कार्यकाल के बाद स्थानीय स्तर पर पार्षदों के खिलाफ जनता और पार्टी कार्यकर्ताओं में नाराजगी का जोखिम के कारण भी दोनों प्रमुख दलों ने 'साफ और नई छवि' पेश करने के लिए पुराने चेहरों को हटाकर नए उम्मीदवारों पर भरोसा जताया है।

संगठनों के भीतर लंबे समय से काम कर रहे नए और सक्रिय कार्यकर्ताओं को मौका देने का भारी दबाव था। टिकट न बदलने पर अंदरूनी बगावत का खतरा बढ़ गया।

9 पार्षदों ने बदला पाला

पुराने विजेताओं में कुछ ऐसे चेहरे भी हैं जो दूसरे दल के टिकट पर मैदान में हैं। इनमें 4 कांग्रेस से भाजपा में आए। 2020 में निर्दलीय जीतने वाले 3 पार्षदों में से दो भाजपा और एक कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ रहे हैं। 2020 में ग्रेटर और हेरिटेज निगम में 250 वार्ड थे। अब 150 वार्ड।

150 सीटों के लिए 1253 उम्मीदवार मैदान में

नगरीय निकाय (नगर निगम, नगर परिषद, नगर पालिका) चुनाव को लेकर नामांकन का कल आखिरी दिन था। जयपुर जिले की बात करें तो यहां 19 निकायों के 690 वार्डों में चुनाव लड़ने के लिए नामांकन के आखिरी दिन 3549 उम्मीदवारों ताल ठोकी। इस प्रकार तीन दिन चली नामांकन प्रक्रिया पूरी होने के बाद अब तक कुल 4238 उम्मीदवार मैदान में उतरे हैं। जिला निर्वाचन अधिकारी संदेश नायक ने बताया- नामांकन प्रक्रिया के पहले दिन 27 अगस्त को 39 उम्मीदवारों ने (48 नामांकन पत्र), दूसरे दिन 29 अगस्त को 650 ने (737 नामांकन पत्र) और आखिरी दिन 31 अगस्त को 3,549 उम्मीदवारों ने (4,099 नामांकन पत्र) नामांकन भरे। इस तरह तीनों दिनों में कुल 4238 उम्मीदवारों ने 4,884 नामांकन पत्र भरे।

3 सितंबर तक नाम वापसी

नायक ने बताया- राज्य निर्वाचन आयोग से जारी कार्यक्रम के अनुसार इन नामांकन पत्रों की जांच 1 सितंबर को होगी और उम्मीदवार के पास 3 सितंबर दोपहर 3 बजे तक अपना नाम वापस लेने का समय रहेगा। 3 सितंबर दोपहर 3 बजे बाद फाइनल प्रत्याशियों (चुनाव लड़ने वाले व्यक्तियों) की सूची जारी की जाएगी। 4 सितंबर को इन सभी प्रत्याशियों को चुनाव चिह्नों का आवंटन किया जाएगा।

1200 से ज्यादा प्रत्याशी जयपुर में

जयपुर नगर निगम की बात करें, तो यहां 150 वार्डों में चुनाव लड़ने के लिए 1253 उम्मीदवार मैदान में आए हैं, जिन्होंने कुल 1392 नामांकन पत्र भरे हैं। आखिरी दिन सबसे ज्यादा उम्मीदवार मैदान में आए। आखिरी दिन सुबह से दोपहर 3 बजे तक रिटर्निंग ऑफिसरों के यहां नामांकन पत्र भरने वालों का जमघट लगा रहा।



अधिकारी की निष्ठा संविधान, कानून व जनहित के प्रति नौकरशाही को मजबूत करने के लिए कई सुधार जरूरी हैं

पवन वर्मा (लेखक एवं पूर्व राजनयिक)



एक समय था जब एक अच्छे प्रशासनिक अधिकारी से 'ना' कहने की क्षमता रखने की अपेक्षा की जाती थी। ऐसा अधिकारी राजनेता से असहमति जताते समय इस बात को लेकर संकोच नहीं करता था कि

कहीं इसे निष्ठा का अभाव तो न समझ लिया जाएगा। वहीं, राजनेता भी अकसर अपने दृढ़ विश्वास के साथ खड़े रहने वाले अधिकारी के साहस का सम्मान करते थे।

वह सम्बंध अब धीरे-धीरे खत्म होता दिखाई दे रहा है। प्रशासनिक अधिकारियों को कभी भारत की 'स्टील फ्रेम' कहा जाता था। उनसे अपेक्षा की जाती थी कि देश में भले राजनीतिक बदलाव होते रहें, लेकिन वे निरंतरता कायम रखेंगे और असुविधाजनक होने पर भी हमेशा पेशेवर सलाह ही देंगे। मंत्री राजनीतिक इच्छा का प्रतिनिधित्व करते हैं। लेकिन सिविल सेवक से अपेक्षा की जाती थी कि वह मंत्री को यह बताए कि प्रशासनिक रूप से क्या संभव है, कानूनी रूप से क्या स्वीकार्य है और संस्थागत दृष्टि से क्या उचित है।

राजनेताओं को 'सहयोगी अधिकारियों' की जरूरत हमेशा से रही है। नौकरशाह भी दोषमुक्त नहीं हैं। वास्तव में, पूरी संभावना इसी बात की होती है कि खुद अधिकारी ने ही राजनेता को सुझाया हो कि वह समझौता करने को राजी है। लेकिन इस रवैये ने प्रशासनिक-सेवा के उस धर्म को कमजोर किया है, जिसके अनुसार अधिकारी की पहली निष्ठा उस संस्था के प्रति होनी चाहिए, जिसकी वह सेवा करता है। उसकी निष्ठा संविधान, कानून व जनहित के प्रति होनी

चाहिए- न कि पद पर बैठे किसी व्यक्ति के प्रति।

नौकरशाही को समझौतापरस्ती के लाभ भी मिलते हैं- मनचाही पोस्टिंग, कार्यकाल में विस्तार, पदोन्नति, सत्ता के करीब रहने का अवसर या महज यह आश्वासन कि करियर में कोई बाधा नहीं डाली जाएगी। नतीजे में हमें मिलता है पारस्परिक सुविधाओं पर टिका एक गठजोड़। राजनेता वफादारी चाहता है; नौकरशाह संरक्षण। दोनों एक-दूसरे की जरूरतें पूरी करते हैं।

मुझे न्यूयॉर्क की एक घटना याद आती है, जब

करना पड़ता है तो यह लज्जास्पद है। उनके लिए पद से मिले आत्मसम्मान को फिर से हासिल करना जरूरी है, क्योंकि प्रशासनिक-सेवा ही वह जगह है, जहां सरकार के फैसले नागरिकों के लिए ठोस वास्तविकताओं में बदलते हैं- चाहे जमीन का अधिग्रहण हो, ठेके का आवंटन, लाइसेंस देना हो, किसी कर्मचारी का तबादला, किसी मकान को गिराना, सड़क का निर्माण या किसी लोगों को किसी योजना का लाभ देना हो।

ईमानदार अधिकारी अलग-थलग पड़ जाते हैं।

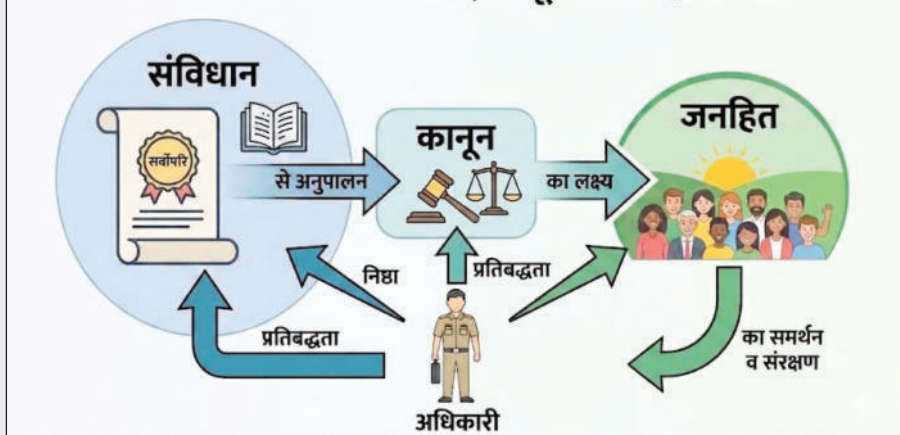
वास्तव में, ऐसे माहौल में ईमानदार अधिकारी ही अवांछित व्यक्ति बन जाता है। उसका बार-बार तबादला किया जाता है, उसे 'अडियल' या 'बाधा डालने वाला' बताया जाता है, उस पर 'टीम भावना' की कमी का आरोप लगाया जाता है। यदि प्रशासक अपनी निष्पक्षता खो दें, तो नागरिकों के अधिकार केवल कानून पर निर्भर नहीं रह जाते, बल्कि इस पर भी निर्भर करने लगते हैं कि उसकी जान-पहचान किससे है, वह किस गुट से जुड़ा है और कितनी घूस दे सकता है।

यह कानून के राज की मूल भावना के विपरीत है। इसलिए 'स्टील फ्रेम' को फिर से मजबूत करने के लिए सुधार जरूरी हैं। पहला, तबादलों-नियुक्तियों की प्रक्रिया को पारदर्शी और स्पष्ट नियमों से बांधा होना चाहिए तथा सद्भावना से काम करने वाले अधिकारियों को संरक्षण मिलना चाहिए।

दूसरा, महत्वपूर्ण फैसलों-निर्देशों का लिखित रिकॉर्ड अनिवार्य किया जाना चाहिए, ताकि अनौपचारिक निर्देशों से मुकर जाने की गुंजाइश कम हो। तीसरा, व्हिसलब्लोअर अधिकारियों को विश्वसनीय संस्थागत संरक्षण मिलना चाहिए। चौथा, पेशेवर दक्षता और ईमानदारी को पुरस्कृत किया जाना चाहिए। राजनेताओं को भी समझना होगा कि उनसे असहमति रखने वाला अधिकारी जरूरी नहीं कि उनका विरोधी भी हो।

गैरकानूनी आदेशों का विरोध करने वाले व्हिसलब्लोअर अधिकारियों को संरक्षण मिलना चाहिए। पेशेवर दक्षता और ईमानदारी को पुरस्कृत किया जाना चाहिए। राजनेताओं को भी समझना होगा कि उनसे असहमति रखने वाला अधिकारी उनका विरोधी नहीं है।

अधिकारी की निष्ठा संविधान, कानून व जनहित के प्रति



एक मंत्री के निजी सचिव (आईएएस अधिकारी) को मंत्री की पत्नी की अगवानी के लिए हवाई अड्डे पर पांच मिनट देरी से पहुंचने पर सार्वजनिक रूप से अपमानित किया गया था। पर उन्होंने बिना कोई विरोध किए उसे सह लिया, क्योंकि वे वह पद खोना नहीं चाहते थे।

अनुबंधित सेवा-शर्तों के तहत काम करने वाले अधिकारियों को अगर इस तरह सत्ता के सामने समर्पण

भ्रष्टाचार तभी फलता-फूलता है, जब संस्थाएं भी उसमें सहभागी बन जाएं। किसी अनुचित काम के लिए नेता को ऐसे अधिकारी की जरूरत होती है, जो उसे अंजाम देने में मदद करें। वहीं नियमों की अनदेखी करने के एवज में संरक्षण चाहने वाले अधिकारी को उसे छत्रछाया देने वाले राजनेता की जरूरत होती है। यह निर्भरता अपने को मजबूत करती रहती है, जिससे

डॉ. अनिल जोशी

यह तो तय है कि हम हिमालय के प्रति गंभीर नहीं हैं। और यह आज की बात नहीं है, पिछले दो दशकों से हिमालय में लगातार हो रही घटनाएं इसी ओर संकेत करती हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इन घटनाओं के लिए हिमालय और यहां के लोगों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इनके लिए दोषी कोई और है, स्थानीय रहवासी तो केवल दूसरे के गुनाहों के विक्रम हैं।

नेपाल की मर्मांतक त्रासदी के बाद पूरे हिमालय में एक बार फिर भय व्याप्त हो गया है। क्योंकि इससे पहले की घटनाएं भी कोई चेतावनी देकर नहीं आई थीं। नेपाल की भोटेकोशी से लेकर बिहार की कोशी नदी तक बाढ़ के प्रकोप के दृश्य सामने आए हैं। नेपाल की त्रासदी को भूकंप से जोड़कर भी देखा जा रहा है, पर हिमखंड भूकंप से उतने प्रभावित नहीं होते। बढ़ते तापक्रम ने ही इन्हें कमजोर किया होगा और फिर ये हादसा हुआ होगा।

हमने यह व्यवस्था तो अवश्य की है कि हिमालय या सीमाओं से सटे जितने भी क्षेत्र हैं, उनके प्रति संवेदनशीलता बरतते हुए उन्हें राज्यों तथा देशों में पुनर्गठित किया है। इसके पीछे मुख्य कारण आर्थिक और सामाजिक पहलुओं पर बल देना था,

नेपाल त्रासदी के बहाने केदारनाथ से नेपाल तक, हमें लगातार मिल रही हैं चेतावनियां



लेकिन इसके पारिस्थितिक की सुविधाएं हों, विलासिता हो या विकास (इकोलॉजिकल) पहलू को कभी समझा

का रोडमैप- पिछले 200 वर्षों में हुए कार्बन उत्सर्जन के कारण ग्लोबल वार्मिंग जैसी गंभीर समस्याएं खड़ी हुई हैं। इस बदलाव ने शायद उन विकसित समुदायों को उतना व्यथित नहीं किया होगा, जितना कि इसके कारण उत्पन्न विषमताओं को हिमालय ने झेला है।

सीधी-सी बात है कि हिमालय एक अत्यंत संवेदनशील क्षेत्र है। इसकी अपनी पारिस्थितिकी बहुत ही नाजुक है। इसमें जरा भी छेड़छाड़ के गंभीर दुष्परिणाम सामने आते हैं, और यही समझ शायद हमारी नीतियों में नहीं झलक पाई है। नेपाल से पहले भी केदारनाथ, सिक्रिम और धराली में हुई त्रासदियां इससे मिलती-जुलती थीं। नेपाल में एक हिमखंड (ग्लेशियर) के टूटने को मुख्य कारण बताया जा रहा है, जिसने पूरे क्षेत्र को हाताहत कर दिया। इससे जुड़ी

समस्याएं हैं, जिनसे हमें चेतावनियां मिलनी चाहिए। हमें त्रासदी के बहाने केदारनाथ से नेपाल तक, हमें लगातार मिल रही हैं चेतावनियां। हमें त्रासदी के बहाने केदारनाथ से नेपाल तक, हमें लगातार मिल रही हैं चेतावनियां। हमें त्रासदी के बहाने केदारनाथ से नेपाल तक, हमें लगातार मिल रही हैं चेतावनियां।

होने वाला कोई भी बदलाव पूरी पृथ्वी को प्रभावित करता है। इसी का परिणाम है कि हम मानसून के स्वाभाविक चक्र को खो चुके हैं। कब और कहां अचानक भारी बारिश (क्लाउड-बर्स्ट) हो जाए, इसका कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। मौसम विभाग भी अकसर अर्चिभूत रह जाता है, क्योंकि पूरा संतुलन बिखर चुका है।

ऐसे में इस त्रासदी को केवल कुछ हजार लोगों की क्षति के रूप में नहीं देखना चाहिए, बल्कि यह आने वाले समय में करोड़ों लोगों के लिए एक बड़े संकट की चेतावनी है। यह सब इसलिए हुआ है, क्योंकि दुनिया का एक बड़ा हिस्सा अपने विकास और सुविधाओं में व्यस्त है, जबकि उसका खामियाजा नाजुक पारिस्थितिक-तंत्र के लोगों को भुगतना पड़ रहा है। जब तक हम इस कड़वे सच को नहीं समझेंगे, तब तक हिमालय के प्रति न्याय नहीं कर पाएंगे। नेपाल की त्रासदी और उससे पहले की घटनाएं भी हमें यही सबक देती हैं।

हिमालय अत्यंत संवेदनशील क्षेत्र है। इसकी पारिस्थितिकी बहुत नाजुक है। इसमें जरा भी छेड़छाड़ के गंभीर दुष्परिणाम सामने आते हैं, और यही समझ हमारी नीतियों में नहीं झलक पाई है। इससे पहले भी केदारनाथ, सिक्रिम और धराली में ऐसी ही त्रासदियां हुई हैं।

एक व्यंग या फसाना! बचना ऐ पॉलिटिशियनों, लो मैं आ गई!

संजय सिन्हा

कंगना रनौत कभी सिनेमा में थीं। जिन-जिन लोगों ने उन्हें सहारा दिया, जिन-जिन से उनकी दोस्ती हुई, एक समय आया जब उन्होंने उन सबकी खात खड़ी कर दी। आप कहेंगे कि उनके साथ ऐसा हुआ तो उन्होंने सच उगल दिया। बिल्कुल। लेकिन इस सच को भी समझने की दरकार होती है कि हर दुनिया का अपना सच होता है। जो कंगना के साथ हुआ या कंगना ने खुद के साथ होने दिया, वही उस रुपहले संसार का सच है।

जैसे मीडिया का अपना सच है, राजनीति का अपना। पुलिस वालों की दुनिया का अपना सच है, जजों की दुनिया का अपना सच। गाहे बगाहे मीडिया वाले भी अपनी दुनिया के उस सच की पोल पट्टी खोलते दिखते ही हैं और राजनीति वाले भी। पुलिस का कोई अधिकारी इस पर उतर आए कि वह पुलिस के भीतरी संसार पर किताब लिखेगा तो वह लिख ही सकता है। वह अपनों की पोल क्या खोलेगा, उस संसार की कलाई उतार सकता है। एक राजनेता चाह ले कि अपनी पार्टी का सच उधेड़ कर रख दे तो क्या नहीं उधाड़ सकता है?

पर हर धंधे की एक गरिमा होती है। कहां क्या नहीं बोलना है, ये हर धंधे की लाज होती है। कंगना सिनेमा में घुस गईं। उनके साथ जो हुआ, वह सब सच भी था, गलत भी था, तो इस सच्चाई के साथ ही था कि वह उसी संसार का हिस्सा थीं। लेकिन जब वह



‘क्रीन’ बनने के बाद अचानक ऋतिक रोशन, आदित्य पंचोली, अध्ययन सुमन और कइयों के कपड़े फाड़ने लगीं, तब कुछ लोगों को बहुत मजा आने लगा था।

कुछ साल पहले ‘आपकी अदालत’ में रजत शर्मा के सामने कंगना ने ऋतिक रोशन, आदित्य पंचोली और अध्ययन सुमन के साथ अपने पुराने रिश्तों और विवादों पर खुलकर बात की थी। सबको बहुत मजा आया था। बीजेपी ने उनके बेबाकपन पर उन्हें अपना लिया। बीजेपी को लगा कि निशिकांत दुबे और गिरिराज सिंह का महिला संस्करण मिल गई है। अब ये उनकी पार्टी के हित में दुश्मनों का मुंह नोच लेंगी। बीजेपी भूल गई कि ये नादान हैं। इनसे दोस्ती जी का जंजाल होने वाली है।

बहुत पहले धर्मेन्द्र हमारे स्टुडियो आए थे तो मैंने यूं ही उनसे मीना कुमारी से उनके रिश्तों की कहानियों के बारे में पूछ लिया था। तब धर्मेन्द्र ने बहुत सादगी से कहा था, संजय जी, छोड़िए बीती बातें। वह नहीं उठ खड़े हुए थे मीना के बहाने हर रिश्ते की कलाई उतारने।

कंगना नादान हैं। भोली हैं। अब पिछले दिनों उन्होंने जिस तरह मुंह खोला है कि लोग उन्हें टांग उठाने वाली कहते हैं। बस, बस, रुक जाएं संजय सिन्हा। आप तो लिखने में मर्यादा का पालन कीजिए। तो लीजिए, मैं रुक जाता हूँ।

लेकिन यकीन मानिए, कंगना जी नहीं रुकेगी। वो का जंजाल बनेंगी हर उस घर के लिए जो उन्हें शरण देगा। अभी बाबा रामदेव से उनकी जो ताजा ठनी है, उसमें भी बात जेन जी को ‘गटर’ कहने से शुरू हुई और जवाब में कंगना ने रामदेव को अपनी जवानी और बेडरूम के बारे में डे-ड्रीम न करने की सलाह तक दे

दी। अब आप ही बताइए, इतनी सीधी बात को घुमा फिराकर लिखने की जरूरत क्या है?

कंगना हैं। कहेंगी तो सीधे कहेंगी।

फिल्म श्री इंडियट्स में ‘चतुर महालिंगम’ को याद कीजिए। चमत्कार की जगह बलात्कार, बलात्कार की जगह चमत्कार करते हुए वह भाषण दे रहा था, तब नेता जी को बहुत मजा आ रहा था। कॉलेज के अधिकारी उसे रोकना चाहते थे, नेताजी उसे बोलने के लिए उकसा रहे थे। उन्हें लग रहा था कि चतुर की जुबान से तमाशा बन रहा है और तमाशा उनके काम का है। लेकिन जब वही चतुर नेताजी की तरफ मुड़ा और उनकी भी उसी भाषा में खबर लेने लगा, तब समझ में आया कि ये तो जी का जंजाल है।

लेकिन तब तक देर हो चुकी थी।

यही राजनीति की सबसे बड़ी भूल होती है। दूसरे की खात खड़ी करने के लिए जिस आदमी को आप मंच देते हैं, एक दिन वह आपकी खात भी खड़ी कर सकता है। सोचने की बात यही है कि जो कंगना कुछ नहीं होते हुए ऋतिक रोशन जैसे सुपर स्टार की खाल उसी दुनिया में रहते हुए उधेड़ चुकी थीं, वह रामदेव की खाल क्यों छोड़तीं?

अभी आशुतोष राणा, सोनू सूद और दूसरे लोगों को लेकर भी उन्होंने जमकर जवाब दिए हैं। सोनू सूद के मामले में तो कंगना ने साफ कहा कि अगर सामने वाले ने उनकी सफलता का एक प्रतिशत भी हासिल नहीं किया है तो वह उनकी बात सुनने को तैयार नहीं। अब कोई कंगना को समझाए कि राजनीति में सफलता का पैमाना फिल्मी बॉक्स ऑफिस नहीं होता। यहां हर आदमी के पीछे एक वोट होता है और हर वोट के पीछे एक कहानी। लेकिन कहानी सुनाने वाली कंगना हों तो? फिर तो भगवान ही मालिक है। कोई हैरानी नहीं होगी अगर कभी उन्होंने किसी महान नेता की पोल खोलने बैठ जाएं। कोई भूलवश भी उनके करीब गया हो तो पहले यह जरूर सोच ले कि उसके पास कंगना के सच से बचने के लिए क्या है और कंगना के पास उनके बारे में बताने के लिए क्या है।

इस मामले में स्मृति ईरानी उनसे ऊपर की रहीं। क्योंकि स्मृति ईरानी जानती थीं कि राजनीति में कब क्या कहना है और कब चुप रहना है। कंगना शायद अभी उस स्कूल में नहीं पहुंची हैं।

जो-जो कंगना के करीब गया है, अब समय है कि सभी सावधान हो जाएं। क्योंकि सिनेमा के संसार वाले समय आने पर बाप-बाप कर चुके हैं। अब बारी राजनीति वालों की है।

कभी रजत शर्मा कंगना को अपनी अदालत में बुलवा कर जिस तरह सिनेमा के दिग्गजों की खूब खाल उधेड़ चुके हैं, आज उन्हें बंपर टीआरपी चाहिए तो अभी फिर कंगना को बुला लें और पूछें, कंगना जी, सिनेमा तो बहुत हो गया, अब राजनीति के बारे में बताइए। कौन मिला? किसने क्या कहा? किसने क्या किया? टिकट कैसे मिला? किसने क्या वादा किया?

मुझे तो रोजा फिल्म का वो गाना याद आ रहा है, रुक्मिणी-रुक्मिणी शादी के बाद क्या-क्या हुआ? अरे रुकिए संजय सिन्हा जी। मर्यादा में रहिए। ठीक है। मैं फिर रुक जाता हूँ। लेकिन कंगना नहीं रुकने वाली किसी के रोकने से।

वह जब बोलती हैं तो फिर यह नहीं देखती कि सामने ऋतिक रोशन है, आदित्य पंचोली है, अध्ययन सुमन है, सोनू सूद है, आशुतोष राणा है, रामदेव है या कोई बहुत बड़ा नेता। बस एक माइक्रोफोन चाहिए। एक कैमरा चाहिए। और सामने कोई पूछने वाला होगा, वह प्राइम टाइम का सुपर हिट होगा। नादान आदमी से दोस्ती हर बार जी का जंजाल बनती है। लेकिन कंगना से दोस्ती हो तो डर यह रहता है कि पता नहीं जंजाल कब लाइव हो जाए।

विशेष- राजनीति में पिछले कुछ दिनों में उनके करीब आने वाले सभी लोग अब सावधान हो जाएं क्योंकि वो कब किसका मौखिक स्टिंग कर देंगी कोई नहीं जानता। वो उगलने पर आई तो सब उगल देंगी। ना सफेद बाल का लिहाज करेंगी, ना गंजे सिर का। की गई मदद का लिहाज तो भूल ही जाएं।

क्योंकि वो नादान हैं।

चर्चा में: हनुमान अंश 2 करोड़ में बनी, कमाए 42 करोड़

इन दिनों तीन बड़ी फिल्में आवारापन 2, टॉक्सिक और बंटवारा 1947 सिनेमाघरों में हैं। तीनों ही फिल्मों में बड़ी स्टारकास्ट है, किसी में सनी देओल, किसी में केजीएफ स्टार यश और एक में इमरान हाशमी। बॉक्स

ऑफिस क्लेश में आवारापन 2 और टॉक्सिक आगे निकल गईं और बंटवारा 1947 पीछे रह गई। इसी बीच एक लड़की का सिनेमाघरों में खड़े रोते हुए वीडियो वायरल हो गया। हर किसी ने माना की लड़की इन तीनों में से कोई एक फिल्म की टिकट न मिलने से भावुक हो गई। लेकिन पूछे जाने पर उसने कहा- मैं फिल्म हनुमान अंश देखने आई थी, लेकिन टिकट नहीं मिले।

हैरानी की बात है कि जहां टॉक्सिक जैसी 500-1000 करोड़ में बनी फिल्मों के सिनेमाघर खाली पड़े हैं, वहां महज 2 करोड़ में बनी हनुमान अंश हाउसफुल कैसे हुई। इस



फिल्म के हीरो का न तो इससे पहले किसी ने नाम सुना और न ही डायरेक्टर का। फिल्म का न तो भव्य प्रमोशन किया गया और न ही इसके फर्सट लुक, टीजर और ट्रेलर की कोई खबर थी। इन्हें फिल्म के ही सोशल

मीडिया हैंडल से पोस्ट किया गया।

नीम करोली बाबा पर बनी ये फिल्म शुरुआती 2 हफ्तों तक कोई कमाई नहीं कर सकी, लेकिन चौथे हफ्ते कुछ ऐसा हुआ कि टॉक्सिक जैसी बड़ी फिल्म से क्लेश के बावजूद इसने 800 प्रतिशत मुनाफा कमाते हुए 42 करोड़ का कलेक्शन कर लिया।

50 साल बाद

आज से 50 साल पहले 15 अगस्त

1975 को अमिताभ बच्चन-धर्मेन्द्र की फिल्म शोले रिलीज हुई। बड़े बजट, बड़ी स्टारकास्टिंग और बड़े डायरेक्टर रमेश सिप्पी की इस फिल्म पर हर किसी की नजरें थीं। कोई बड़ा फिल्ममेकर इस फिल्म के आसपास अपनी फिल्में रिलीज नहीं करना चाहता था। लेकिन इस फिल्म के साथ ही 25 लाख में बनी धार्मिक फिल्म जय संतोषी मां रिलीज की गई। फिल्म में कोई टॉप एक्टर नहीं था, इसके बावजूद फिल्म ऐसी चली कि इसने 5 करोड़ रुपए का ऐतिहासिक बॉक्स ऑफिस कलेक्शन किया। इसके बाद अब यह फिल्म उसी इतिहास को दोहरा रही है।

जहां-जहां फिल्म %जय संतोषी मां% रिलीज हुई, वहां-वहां ‘शोले’ की कमाई पर असर पड़ा। लोग चप्पल उतारकर सिनेमाघरों में जाते और स्क्रीन की आरती उतारते थे। जल्द ही ये हिंदी सिनेमा की सबसे कामयाब अध्यात्मिक फिल्मों में शामिल हो गई। इसके गाने, मैं तो आरती उतारूं रे संतोषी माता की और जय संतोषी मां आज भी सुने जाते हैं।

कैसे कमाए 42 करोड़ रुपए?

ट्रेड एक्सपर्ट तरण आदर्श ने फिल्म की कमाई पर कहा- ‘अगर आप कलेक्शन देखेंगे तो पहले दिन से लेकर अब तक, खासकर थर्ड वीक और चौथे वीकेंड

में वो ऐतिहासिक है। ऐसा बहुत कम देखने को मिलता है।’

कटेंट तो है ही, लेकिन वर्ड ऑफ माउथ से फिल्म को फायदा मिला। अगर नेगेटिव पब्लिसिटी होती है, तो दूसरे-तीसरे दिन फिल्म पर असर दिखता है, लेकिन अगर रिव्यू पॉजिटिव हैं, तो फिल्म चल जाती है। यही हनुमान अंश के साथ हुआ। दूसरे वीक में ये फिल्म उतरने वाली थी। सिर्फ 40 लाख का कलेक्शन था। पहले हफ्ते भी कुछ खास कलेक्शन नहीं था।

7 अगस्त को जब फिल्म हनुमान अंश रिलीज हुई, तो इसे चुनिंदा स्क्रीन्स मिलीं। 14 अगस्त को आवारापन 2 और बंटवारा 1947 आने से फिल्म की स्क्रीन्स और कम हो गईं।

फिल्म की कमाई भी खास नहीं हो रही थी, तो इसे सिनेमाघरों से हटाया जाने लगा। लेकिन फिल्म अब भी कई सिनेमाघरों में है। इसकी वजह क्या थी, सवाल पूछे जाने पर तरण आदर्श कहते हैं, ‘फिल्म के प्रोड्यूसर्स ने डिस्ट्रीब्यूटर्स से रिक्वेस्ट की कि कैसे भी हमारी फिल्म थर्ड वीक में चलाओ। डिस्ट्रीब्यूटर्स ने कहा कि टॉक्सिक आ रही है, फिल्म वैसे भी उतार दी जाएगी। लेकिन प्रोड्यूसर्स ने कहा- प्लीज इसे कैसे भी चलाइए।’

क्या मैं आपसे कम भारतीय हूँ?

और क्या सिर्फ इसलिए कि मैं एक प्रतिबद्ध मुसलमान हूँ?

वजाहत हबीबुल्लाह

(जम्मू-कश्मीर कैडर के नौकरशाह और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के पूर्व अध्यक्ष)



विभाजन का जुर्म हिन्दुस्तानियों ने खुद अपने ऊपर किया।

आधी रात के उस क्षण, जब दुनिया सो रही होगी, भारत जीवन और स्वतंत्रता के लिए जाग उठेगा। 14 अगस्त 1947 को भारत के भावी प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने ये शब्द कहे थे; लेकिन उस दिन उस स्वतंत्रता आंदोलन के कथित विजेता महात्मा गांधी कलकत्ता में थे। उधर राष्ट्रीय राजधानी और उसके आसपास का इलाका सांप्रदायिक उन्माद में झुलस रहा था - भारतीय, भारतीय के खिलाफ खड़ा था।

इसीलिए महात्मा गांधी के पौत्र राजमोहन गांधी ने अपने नाना सी. राजगोपालाचारी राजाजी की जीवनी-Rajaji, A Life में लिखा है- महात्मा स्वतंत्रता के उल्लास को नहीं, भ्रातृहत्या की पीड़ा को महसूस कर रहे थे।

और जब तथाकथित आज़ाद भारत का पहला नया साल 1948 में आया, तब एक थाई आगंतुक ने गांधी को भारत की स्वतंत्रता पर बधाई दी। गांधी ने दुःख में झुके स्वर में उससे पूछा, आज भारतीय अपने ही भाई से डरता है। क्या यही स्वतंत्रता है?

सदियों पहले, 7वीं सदी ईस्वी के आरंभ में इस भूभाग की यात्रा करने वाले चीनी बौद्ध भिक्षु श्वेनज्वांग ने भारत के बारे में लिखा था-

दूर-दराज के स्थानों के लोग, जिनके रीति-रिवाज अलग-अलग हैं, सामान्यतः उस भूमि को, जिसकी वे सबसे अधिक प्रशंसा करते हैं, भारत कहते हैं। निस्संदेह, भारत अपने अनंत इतिहास के बहुत छोटे-से हिस्से में ही राजनीतिक रूप से एकीकृत रहा है; लेकिन क्या किसी भूभाग की राजनीतिक एकता भर से वह राष्ट्र बन जाता है, जिसे हम आज भारत के नाम से पहचानते हैं? तमाम राजनीतिक उथल-पुथल के बावजूद, भारत वास्तव में वैसा ही बना रहा जैसा श्वेनज्वांग ने उसे देखा था। अपनी पवित्र भूमि को 5 भारतों के रूप में वर्णित करते हुए भी उसने भारत को एक अखंड सांस्कृतिक, पवित्र और भौगोलिक इकाई के रूप में देखा था।

मेरा मानना है कि मेरा भारत अपने पूरे इतिहास में, कम-से-कम छठी शताब्दी ईसा पूर्व के 16 महाजनपदों के समय से, ऐसा

ही रहा है - उस आदरणीय चीनी भिक्षु की यात्रा और उसके द्वारा देखे गए भारत से भी लगभग एक सहस्राब्दी पहले से।

और इस मामले में मैं विलियम डलरिम्पल से असहमत हूँ। मैंने श्वेनज्वांग का उद्धरण डलरिम्पल की पुस्तक The Golden Road से लिया है, लेकिन मेरा मत उनसे अलग है; मेरा मानना है कि यह राष्ट्र निरंतर बना रहा, क्योंकि इस सांस्कृतिक मिश्रण में इस्लाम का भी समावेश हुआ! यह सिलसिला तब तक चलता रहा, जब तक आधी रात के

हुआ, जिसकी मिसाल तब तक पूरे ब्रिटिश साम्राज्य में कहीं नहीं मिलती थी। इस आंदोलन का नेतृत्व करने वाले अली बंधुओं में छोटे भाई मोहम्मद अली ने 1916 में जेल में रहते हुए मुस्लिम लीग के अध्यक्ष का चुनाव जीता था और 1923 में वे कांग्रेस के अध्यक्ष भी बने।

नवंबर 1919 में हुई केंद्रीय खिलाफत समिति की बैठक की अध्यक्षता स्वयं

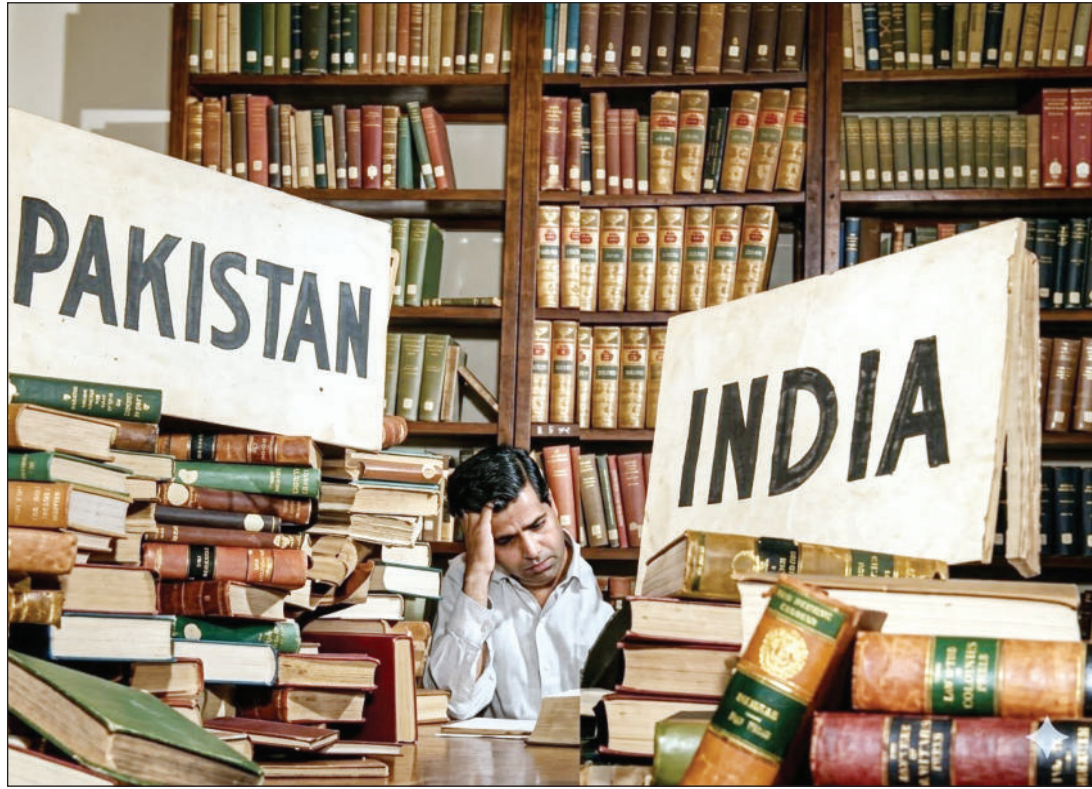
हैरो स्कूल की शिक्षा और अंग्रेज़ी संस्कारों से लगभग अंग्रेज़ ही बन चुका था, लेकिन भारत के गौरव से बेपनाह अभिभूत था। नेहरू का तर्क था कि यदि भारत के विभिन्न घटकों को एक राष्ट्र के रूप में ढाला जा सके, तो उसका भविष्य उज्ज्वल हो सकता है।

यहीं से समस्या शुरू होती है।

इस दृष्टि से भारत एक ऐसा भौगोलिक

भूभाग बन जाता है, जो अनेक राष्ट्रों से बना है और जिनके बीच लगातार संघर्ष होता रहा

'क्या मैं, एक भारतीय मुसलमान, अपनी भारतीय विरासत पर गर्व करते हुए और भारत की सेवा में अपना योगदान देते हुए—जैसा कि मेरे माता-पिता ने किया और उनसे पहले मेरे पूर्वजों ने किया—किसी दूसरे राष्ट्र की संतान हूँ?'



उस निर्णायक क्षण में भारत को निर्ममता से चीरकर दो हिस्सों में बाँट नहीं दिया गया! विंस्टन चर्चिल—उस साम्राज्य के अंतिम प्रहरी, जिसके बारे में कहा जाता था कि वहाँ सूरज कभी अस्त नहीं होता—ने भारत को महज एक भौगोलिक अभिव्यक्ति बताया था।

यह समझना कठिन नहीं होना चाहिए कि ये एक छद्मबुद्धिजीवी की बातें थीं। भारत की राष्ट्र-सत्ता का प्रमाण तो 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में ही मिल चुका था, जब भारत के दोनों प्रमुख समुदाय—चाहे वे ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में हों या मेरे अपने घर अवध के हिंदू हृदय-प्रदेश में—एक जर्जर मुस्लिम सम्राट के समर्थन में एकजुट हो गए थे।

फिर 1920 के दशक में इस एकता ने एक बार फिर अपनी ताकत दिखाई। खिलाफत आंदोलन के जरिए ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारत का पहला ऐसा व्यापक, विशुद्ध रूप से भारतीय औपनिवेशिक-विरोधी जनांदोलन खड़ा

महात्मा गांधी ने की थी। समिति में मौलाना आज़ाद भी थे। खिलाफत आंदोलन ने पहली बार बड़ी संख्या में मुसलमानों को कांग्रेस की मुख्यधारा में खींच लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और पूरे एशिया में औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध एक व्यापक लामबंदी को जन्म दिया।

दुर्भाग्य यह था कि राज से मिली शिक्षा ने—और शिक्षा जितनी अधिक अंग्रेज़ियत में रंगी होती गई, हम अपने आपको समझने में उतने ही असफल होते गए—हमें इसके उलट निष्कर्षों तक पहुँचाया। पाकिस्तानी इतिहासकार आयशा जलाल ने इसे दिमाग का उपनिवेशीकरण कहा है; हालाँकि मुझे संदेह है कि वे यह मानने को तैयार होंगी कि भारत को दो राष्ट्रों में बाँटकर देखने का सिद्धांत स्वयं उसी औपनिवेशिक मानसिकता की उपज था।

जवाहरलाल नेहरू की The Discovery of India इस बात की पुष्टि करती है। इस किताब में हमें एक ऐसे युवा अंग्रेज़ की छवि दिखाई देती है, जो अपने

है। लेकिन ऐसा निष्कर्ष तुलसीदास की रामचरितमानस के विराट सांस्कृतिक संदेश को पूरी तरह नजरअंदाज कर देता है। रामचरितमानस की अवधि में उस भाषा की भी जड़ें मौजूद हैं, जो आगे चलकर उर्दू बनी और जिसे बीसवीं सदी के मध्य में विभाजनकारी राजनीति ने मुसलमानों की भाषा के रूप में परिभाषित कर दिया।

इससे भी अधिक गहरा प्रतीक है ताजमहल!!

एक रूढ़िवादी सुन्नी मुस्लिम सम्राट—जो रक्त की दृष्टि से तुर्क से अधिक राजपूत था—ने इसे एक शिया मुस्लिम सम्राट की स्मृति में बनवाया। इसकी वास्तुकला, निर्माण-सामग्री और रत्नों की सजावट में पूरे दक्षिण एशिया के दूर-दराज इलाकों का योगदान था और इसे हर जातीय-सामुदायिक पृष्ठभूमि के कारीगरों ने मिलकर बनाया था। ताजमहल भारत के इसी बहुस्तरीय, बहुआयामी चरित्र का एक

असाधारण प्रतीक है। हाल के समय में इसका एक और उदाहरण दिल्ली के हुमायूँ के मकबरे के आधुनिक संरक्षण में दिखाई देता है - भारत के इस सांस्कृतिक सम्मिश्रण की एक और उपज, आगा खान फाउंडेशन, ने इसे पुनर्जीवित किया।

इसलिए, निष्पक्ष दृष्टि से देखें तो भारत का इतिहास चीख-चीखकर कुछ और ही कहता है।

हां, भारत एक विभाजित समाज था—जाति और पेशे की रेखाओं पर विभाजित। लेकिन ये विभाजित समुदाय एक-दूसरे पर निर्भर भी थे। वे मिलकर एक ऐसी सामाजिक संरचना बना रहे थे जो अपने मूल में एक राष्ट्र थी—वही राष्ट्र जिसे आज हम भारत कहते हैं। यही उस भारत की संपन्नता का आधार था, जिसने डलरिम्पल की गोल्डन रोड को संभव बनाया; और इसी परस्पर निर्भरता ने भारत की सामाजिक संरचना को उसकी भारी असमानताओं के बावजूद स्थिर बनाए रखा।

उदाहरण के लिए, डलरिम्पल भारत के प्राचीन रेशम उद्योग की भरपूर प्रशंसा करते हैं। आज उत्तर भारत के अधिकांश बुनकर मुसलमान हैं, जबकि उनके शानदार उत्पादों के व्यापारी हाल तक लगभग पूरी तरह हिंदू थे। व्यापार हिंदू बनिया समुदाय का काम था, जबकि पूरे भारत के कारीगर समुदायों ने बड़े पैमाने पर इस्लाम स्वीकार कर लिया था! इसके बावजूद उत्तर प्रदेश के अधिकांश मुसलमानों ने कभी अलग मुस्लिम मातृभूमि के विचार का समर्थन नहीं किया। 1937 में मुस्लिम लीग की चुनावी सफलता को पाकिस्तान या अलग मुस्लिम राष्ट्र की मांग के समर्थन के प्रमाण के रूप में पेश नहीं किया जा सकता। उस समय के मतदाता मुख्यतः मुस्लिम समाज का जमींदार वर्ग थे, जो कांग्रेस के घोषित समाजवाद और उसके भूमि-सुधार कार्यक्रम से भयभीत थे!!

मेरा अपना राजनीतिक रूप से सक्रिय परिवार भी - जो अवध के पुराने सामंती नेतृत्व का हिस्सा था - 1947 में भारत, पाकिस्तान और ब्रिटेन के बीच बिखर गया! मेरी दादी—इनाम फातिमा—मुस्लिम लीग की नेता थीं। उन्होंने पार्टी के महिला संगठन की स्थापना की थी और 1938 के पटना अधिवेशन में उसकी महिला शाखा की प्रमुख बनी थीं। बचपन में उनके साथ हुई मेरी बातचीत में उन्होंने अपने स्वीकार्य मार्गदर्शक जिज्ञा का बहुत कम जिक्र किया; लेकिन अली बंधुओं का जिक्र वे अक्सर और बड़े गर्व से करती थीं। उनके अनुसार, भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के वास्तविक शिल्पकार अली बंधु थे।

हमारे परिवार में विभाजन को लेकर होने वाली बहसें अक्सर बेहद कटु हो जाती करती थीं। लेकिन उन बहसों में असली सवाल यह नहीं था कि दो परस्पर युद्धरत राष्ट्रों को अलग करना जरूरी था; सवाल होता था—

अगले पेज पर जारी

निर्माण से पैदा होने वाले नए अवसर क्या होंगे? मेरी दादी ने मुस्लिम लीग का समर्थन मुख्यतः मुस्लिम महिलाओं की मुक्ति के लिए किया था और इस मुद्दे पर उन्हें जिज्ञा का मजबूत समर्थन प्राप्त था। वह स्वयं अवध के तालुकेदार परिवारों की उन महिलाओं में पहली थीं - जिनमें अधिकांश राजपूत और कायस्थ थीं - जिन्होंने पर्दा त्याग दिया था।

और जब विभाजन का समय आया, तब घर छोड़ना उनके लिए कोई विकल्प ही नहीं था। और

न ही उत्तर प्रदेश के अधिकांश मुसलमानों ने - और उस समय भारत के किसी भी राज्य की तुलना में उत्तर प्रदेश में मुसलमानों की संख्या सबसे अधिक थी - विभाजन के दबाव में पलायन किया।

तो फिर भारत के मुस्लिम नेतृत्व का क्या?

बीसवीं सदी के शुरुआती वर्षों में मुस्लिम चिंतन के निर्विवाद नेता शौकत अली और मोहम्मद अली थे। यह वह समय था जब लॉर्ड कर्जन सक्रिय रूप से एक अलग भारतीय मुस्लिम राष्ट्र की अवधारणा को बढ़ावा दे रहे थे और वीर सावरकर तथा सर सैयद अहमद खान जैसे एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न विचारों वाले बुद्धिजीवी भी किसी न किसी रूप में ऐसी धारणा के समर्थक थे। लेकिन अली बंधु कांग्रेस और तत्कालीन मुस्लिम लीग, दोनों के नेता थे। लंदन की गोलमेज कॉन्फ्रेंस में भारत के मुसलमानों का

प्रतिनिधित्व करने वाले मौलाना मोहम्मद अली का नाम अब किंवदंती का हिस्सा है। वे उस सम्मेलन से भारत लौटे ही नहीं!

उन्होंने कहा था:

मैं दो समान आकार के वृत्तों से संबंधित हूँ, लेकिन वे एक-दूसरे के भीतर संकेन्द्रित नहीं हैं; एक भारत है और दूसरा मुस्लिम संसार।।।।। हम भारतीय मुसलमान, दोनों वृत्तों में आते हैं। हम इन दोनों वृत्तों के हैं - दोनों में तीस-तीस करोड़ लोग हैं - और हम इनमें से किसी को भी छोड़ नहीं सकते। एक भारतीय और मुसलमान के रूप में मैं स्वयं भी - मोटे तौर पर - इससे सहमत हूँ। लेकिन (मुसलमानों का) भारतीय वृत्त, पेशागत और सामाजिक विभाजनों की उन परतों से बुना हुआ है, जिन्हें आज पसमांदा - अर्थात् वंचित और अशराफ - अर्थात् विशेषाधिकार प्राप्त के रूप में पेश किया जा रहा है।

और अंततः औपनिवेशिक मानसिकता की जीत हुई।

उसने भारत की पहचान को अंतिम रूप से विकृत कर दिया। विभाजन के इस पूरे नाटक में भारत के दो प्रमुख बौद्धिक किरदार थे—जवाहरलाल नेहरू और मुहम्मद अली जिन्ना। नेहरू एक दूरदर्शी राजनेता थे, जो सर्वहारा की एकता के माध्यम से भारत के विभिन्न समुदायों को एक सूत्र में बांधने का सपना देखते थे; और जिन्ना भारत के महानतम वकील थे, लेकिन वे भारत को दो राष्ट्रों - एक हिंदू और

दूसरा मुस्लिम - के रूप में देखते थे, जिन्हें भूगोल ने एक-दूसरे के बगल में ला खड़ा किया था और शायद इसके अलावा उनके बीच बहुत कुछ साझा नहीं था! दोनों ने धर्मनिरपेक्षता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जताई। लेकिन दोनों एक मूलभूत असत्य पर दृढ़ता से खड़े थे—कि भारत एक तरह का conglomerate, विभिन्न घटकों का एक समूह था, जिसे राष्ट्रत्व का रूप देना अभी बाकी था। और इसलिए माउंटबेटन के प्रस्ताव के सामने दोनों की प्रतिक्रिया सामने आई।

वह प्रस्ताव वास्तव में एक अल्टीमेटम था—विभाजन स्वीकार करो या ब्रिटिश शासन को जारी रहने दो। यह उस सरकार का अल्टीमेटम था जो एक ऐसे युद्ध में परास्त हो चुकी थी जिसे यूरोप में सोवियत संघ और एशिया में अमेरिका जीत चुके थे। असल में यह एक थकी-हारी सत्ता का कट एंड रन अभियान था—एक ऐसी सत्ता जो आर्थिक, सैन्य और राजनीतिक रूप से दिवालिया हो चुकी थी और अब जितनी जल्दी हो सके अपना बोरिया-बिस्तर समेटकर भाग निकल जाना चाहती थी! अंतिम ब्रिटिश वायसराय माउंटबेटन और उनकी हठी पत्नी एडविना इस काम के लिए चुने गए औज़ार थे।

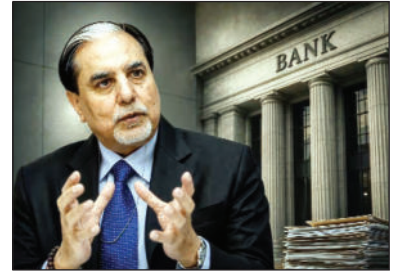
गांधी ने कांग्रेस कार्यसमिति से आग्रह किया था कि यदि विभाजन के लिए सहमत होना ही पड़े, तो कम-से-कम उसके विवरण और शर्तें हम आपस में तय करें। लेकिन उनका यह आग्रह दृढ़ता से ठुकरा

दिया गया। और इस भयावह तथा अत्यंत संवेदनशील काम को—जिसमें दंगे, करोड़ों लोगों का विस्थापन, पलायन और पुनर्वास शामिल था—उस औपनिवेशिक प्रशासन के हवाले कर दिया गया जिसे एक पराजित साम्राज्य ने नियुक्त किया था।

नतीजा वही होना था जो हुआ - भारतीयों को भारतीयों के विरुद्ध खड़ा कर दिया गया। यह बात आज व्यापक रूप से स्वीकार की जाती है कि भारत का विभाजन एक मानवीय त्रासदी था! होलोकॉस्ट की त्रासदी को भी दुनिया भर में एक ऐसे अपराध के रूप में स्वीकार किया जाता है, जिसके लिए पूरे यूरोप को जवाबदेह ठहराया जाना चाहिए था - हालाँकि ऐसा हुआ नहीं। लेकिन विभाजन कई मायनों में उससे भी बड़ा अपराध था—एक ऐसा अपराध जो भारत ने स्वयं अपने ऊपर किया, भले ही उसका उत्प्रेरक एक मरता हुआ साम्राज्य रहा हो। भारत को और उस भूभाग को जो आज पाकिस्तान और बांग्लादेश कहलाता है, को यह स्वीकार करना होगा। तभी हम उस घाव को भरने की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं, जो लगभग एक सदी से रिस रहा है। मैं अपने पाठकों के सामने एक सवाल रखकर समाप्त करना चाहता हूँ—क्या मैं, एक भारतीय मुसलमान, अपनी भारतीय विरासत पर गर्व करते हुए और भारत की सेवा में अपना योगदान देते हुए—जैसा कि मेरे माता-पिता ने किया और उनसे पहले मेरे पूर्वजों ने किया—किसी दूसरे राष्ट्र की संतान हूँ?

सुभाष चंद्रा केस में एनसीएलटी के आदेश पर रोक, 5-सदस्यीय बेंच ने रोक लगाई

एनसीएलटी की 5-सदस्यीय बेंच ने जी ग्रुप के फाउंडर सुभाष चंद्रा के रीपेमेंट प्लान पर रोक लगा दी है। 25 अगस्त के आदेश में उनके 22,000 करोड़ से ज्यादा के बकाए कर्ज के बदले सिर्फ 6.25 करोड़ चुकाने के प्लान को मंजूरी दी गई थी।



कोर्ट ने सुभाष चंद्रा पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपनी किसी भी संपत्ति को बेचने या ट्रांसफर करने पर रोक लगा दी है। सभी संबंधित पक्षों को नोटिस भी जारी किया है।

यह एनसीएलटी के इतिहास में पहली बार है, जब पांच सदस्यीय बेंच बनाई गई है। बेंच की अध्यक्षता प्रेसिडेंट जस्टिस अनूपिंदर सिंह ग्रेवाल कर रहे हैं। इसके बाकी सदस्य बचु वेंकट बालाराम दास, महेंद्र खंडेलवाल, अतुल चतुर्वेदी और रविंद्र चतुर्वेदी हैं।

5 जजों की बेंच का फैसला

सदस्यीय बेंच ने सुभाष चंद्रा के ₹6.25 करोड़ वाले रीपेमेंट प्लान की मंजूरी पर तुरंत रोक लगा दी है। इसके अलावा कोर्ट ने सुभाष चंद्रा पर अपनी कोई भी संपत्ति बेचने या ट्रांसफर करने पर पाबंदी लगा दी है। मामले से जुड़े सभी पक्षों को नोटिस जारी किए गए हैं।

वजह क्या है?

ट्रिब्यूनल ने साफ कहा कि 25 अगस्त को आया फैसला जजों के स्पष्ट बहुमत से नहीं बना था। मामले की सुनवाई करने वाले तीनों सदस्यों की राय अलग-अलग थी, इसलिए उस आदेश को वैध नहीं माना जा सकता।

सुभाष चंद्रा पर कर्ज और ऑफर?

सुभाष चंद्रा पर बैंकों और वित्तीय संस्थानों का कुल ₹22,006.57 करोड़ का कर्ज बकाया है। इस भारी-भरकम कर्ज के बदले उन्होंने सिर्फ 6.25 करोड़ चुकाने का प्रस्ताव दिया था, जिसका बैंक लगातार विरोध कर रहे थे। यह रकम सुभाष चंद्रा द्वारा दी गई पर्सनल गारंटी से जुड़ी है। जब किसी कंपनी या मूल कर्जदार को बैंक लोन देते हैं, तो कई बार प्रमोटर अपनी व्यक्तिगत गारंटी देता है कि अगर कंपनी भुगतान नहीं कर पाई, तो वह इसे चुकाएगा।

खाली होते गांव, कराहते शहर और बिखरता भारत

डॉ. दीपक गोस्वामी (मानवीय व्यवहार वैज्ञानिक)

भारत की आत्मा गांवों में बसती है—यह वाक्य हम वर्षों से सुनते आ रहे हैं। लेकिन आज का यथार्थ यह है कि गांवों की आत्मा धीरे-धीरे खाली होती जा रही है और शहर अपनी क्षमता से कहीं अधिक बोझ तले दबते जा रहे हैं। यदि यह प्रवृत्ति नहीं रुकी, तो केवल गांव ही नहीं उजड़ेंगे, बल्कि भारत का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय संतुलन भी बिखर जाएगा।

एक कटु प्रश्न हमारे सामने खड़ा है—क्या हम सचमुच गांवों का विकास चाहते हैं, या केवल गांवों के संसाधनों का उपयोग? हमें गांव का दूध चाहिए, पर ग्वाले का जीवन नहीं। हमें खेत का अन्न चाहिए, पर किसान का संघर्ष नहीं चाहिए। हमें गांव की ताजी सब्जियां चाहिए, पर उन्हें उगाने वाले हाथों का सम्मान नहीं। हमें मिट्टी की सौंधी खुशबू चाहिए, पर उसी मिट्टी में श्रम करना स्वीकार नहीं। हमें गांव के मेले, त्योहार और लोक संस्कृति आकर्षित करते हैं, पर गांव की जिम्मेदारियां नहीं। हमने गांव को मानो एक ऐसे भंडारघर में बदल दिया है, जहां से आवश्यकता पड़ने पर संसाधन निकाल लिए जाते हैं और फिर उसे उसके हाल पर छोड़ दिया जाता है।

यहीं से वह कड़वा प्रश्न जन्म लेता है—गांव लूट लो, पर गांव में मत रहो—क्या यही आधुनिक भारत

का विकास मॉडल है?

आज ग्रामीण पलायन केवल आर्थिक समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और नीतिगत विफलता का परिणाम है। जब एक शिक्षित युवा गांव लौटता है,



तो उससे कहा जाता है कि खेती कर ले। लेकिन वह देखता है कि खेती अब केवल परिश्रम का नहीं, बल्कि अनिश्चितता का दूसरा नाम बन चुकी है। बीज, उर्वरक,

डीजल, बिजली और सिंचाई की लागत लगातार बढ़ती जा रही है। मौसम का असंतुलन फसल को प्रभावित करता है और बाजार तक पहुंचने पर उचित मूल्य का संकट सामने खड़ा रहता है। ऐसी परिस्थितियों में युवा

स्वास्थ्य सेवाएं, डिजिटल कनेक्टिविटी और आधुनिक रोजगार के अवसर अभी भी अनेक स्थानों पर सीमित हैं। जब शहर बेहतर विद्यालय, अस्पताल, इंटरनेट, परिवहन और रोजगार उपलब्ध करते हैं, तो युवा का पलायन केवल उसकी महत्वाकांक्षा नहीं, बल्कि परिस्थितियों की स्वाभाविक प्रतिक्रिया बन जाता है।

सबसे बड़ी समस्या हमारी सामाजिक मानसिकता है। यदि कोई युवा महानगर में छोटी-सी नौकरी करता है तो उसे सफल माना जाता है, जबकि वही युवा यदि आधुनिक तकनीक के साथ खेती करे तो उसे पिछड़ा समझ लिया जाता है। हमने अपने ही अन्नदाता के श्रम का सम्मान कम कर दिया है। जब तक कृषि और ग्रामीण उद्यमिता को सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी, तब तक गांवों से प्रतिभा का प्रवाह शहरों की ओर जारी रहेगा।

इस प्रवृत्ति के दुष्परिणाम अब स्पष्ट दिखाई देने लगे हैं। अनेक गांवों में घर खाली हो रहे हैं, बुजुर्ग अकेले रह गए हैं, खेती ठेके पर जा रही है और स्थानीय अर्थव्यवस्था कमजोर पड़ रही है। दूसरी ओर शहरों पर जनसंख्या का अत्यधिक दबाव बढ़ रहा है। आवास महंगे हो रहे हैं, यातायात जाम बढ़ रहा है, प्रदूषण गंभीर होता जा रहा है और जीवन की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है। विडंबना यह है कि वही लोग सप्ताहांत में ग्रामीण जीवन का अनुभव करने के लिए फार्महाउस और रिसॉर्ट खोजते हैं।

खेती को सम्मानजनक करियर नहीं, बल्कि मजबूरी मानने लगता है।

दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा,

क्या 'वंदे मातरम' का लेखन अंग्रेजपरस्ती में हुआ?

नीरंद नागर

हमारे देश के राष्ट्रगान 'जन-गण-मन' पर वर्षों से विवाद हो रहा है। इस विवाद को जन्म देने वाले तीन तरह के लोग हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यह गीत दिसंबर 1911 में ब्रिटिश साम्राज्य के सम्राट जॉर्ज पंचम की स्तुति में लिखा गया था, जब वे अपनी पत्नी के साथ भारत आए थे। अब हम ब्रिटिश साम्राज्य की गुलामी से निकल चुके हैं, इसलिए एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में इस गीत को दोहराने का कोई अर्थ नहीं है। दूसरे लोग राष्ट्रगान की आलोचना इस आधार पर करते हैं कि इसमें 'अधिनायक' शब्द का इस्तेमाल किया गया है।

अधिनायक का अर्थ होता है डिक्टेटर। लेकिन अपने देश में डिक्टेटर नहीं होता, आजादी के बाद हमने डिमॉक्रेसी का रास्ता चुना है। फिर हमारा शासक चाहे जो भी हो, उसके अधिनायक होने की महिमा का बखान क्यों किया जाए? तीसरी श्रेणी में वे आलोचक हैं जो कहते हैं कि यह आजादी के पहले का लिखा हुआ गीत है, लेकिन अब सिंध वगैरह तो हमारे पास रहे नहीं। ऐसे में इस गीत का औचित्य नहीं रहता।

जो लोग राष्ट्रगान को ज्यों का त्यों रखना चाहते हैं और उसे बदलने की मांग सिरे से खारिज करते हैं, उनका तर्क यह होता है कि राष्ट्रगान का प्रतीकात्मक महत्व है और ऐसे प्रतीक रोज-रोज नहीं बदले जाते। मसलन राष्ट्रध्वज का चक्र अब जीवन के किसी दूसरे क्षेत्र में नजर नहीं आता। शेरों की आबादी लगातार घटती जा रही है, लेकिन हमारे राष्ट्रीय प्रतीक तो वही

बने रहेंगे।

आश्चर्य है कि राष्ट्रगान को बदलने की मांग करने वाले ज्यादातर लोग यह मांग करते हैं कि 'जन गण मन' की जगह हमें 'वंदे मातरम' को अपना राष्ट्रगान बनाना चाहिए। यह गीत बंकिम चंद्र चटर्जी के उपन्यास 'आनंद मठ' से लिया गया है। लेकिन क्या वंदे मातरम विवादों से मुक्त है? नहीं, बल्कि 'वंदे मातरम' तो 'जन-गण-मन' से ज्यादा विवादित है। अगर पूरा गीत पढ़ें तो पता चलेगा कि इसमें मां के रूप में दुर्गा की स्तुति है। रवींद्रनाथ टैगोर समेत कई लोगों ने इसको राष्ट्रगान बनाने का इसी आधार पर विरोध किया था कि अनेक धर्मों वाले भारत में ऐसा कोई गीत राष्ट्रगान नहीं बनाया जाना चाहिए, जिसमें किसी एक धर्म के देवी-देवता की स्तुति हो।

इतना ही नहीं, यह गीत जिस उपन्यास से लिया गया है, वह अंग्रेजी शासन का विरोध नहीं, बल्कि समर्थन करता है। आपको शायद विश्वास न हो, लेकिन सच्चाई यही है।

'आनंद मठ' की कहानी संन्यासी विद्रोह के

ऐतिहासिक प्लॉट के आधार पर लिखी गई थी। किस्सा सन 1769 से शुरू होता है जब बंगाल में मीर जाफर के शासन काल में जबरदस्त अकाल पड़ा था। मीर जाफर के अराजक, अक्षम और क्रूर शासन में जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। ऐसे में उसके शासन को उखाड़ फेंकने के लिए सत्यानंद नामक एक संन्यासी एक सशस्त्र संगठन बनाता है, जिसके सदस्य गेरूआ पहनते हैं और कड़े नियमों का पालन करते हुए मातृभूमि को मुसलमान शासन से मुक्त कराने की कोशिश करते हैं। कहानी में मातृभूमि की संतान कहने वाले इन संन्यासियों को अंत में सफलता मिलती है और उत्तर बंगाल में संतानों का प्रभुत्व हो जाता है।



चूंकि मीर जाफर को अंग्रेजों का समर्थन प्राप्त था, इसलिए संतानों की अगली मुठभेड़ अंग्रेजी सेना से हुई। उपन्यास के मुताबिक संतानों ने बहादुरी से लड़ते हुए अंग्रेजी फौज को भी हरा दिया। लेकिन कथा के इसी बिंदु पर एक दिव्यपुरुष अवतरित होते हैं और सत्यानंद को युद्ध समाप्त करने का निर्देश देते हैं। उनके मुताबिक संतान विद्रोह का मकसद यही था कि अंग्रेज राज्याभिषिक्त हों।

दिव्यपुरुष कहानी के मुख्य पात्र सत्यानंद से कहते हैं, 'तुम्हारा काम पूरा हुआ। मुसलमान राज्य का ध्वंस हुआ। नाहक हत्या की अब ज़रूरत नहीं। अंग्रेज शत्रु नहीं, मित्र हैं। अंग्रेजी राज्य में लोग सुखी होंगे, झुंझुंकाटक धर्माचरण करेंगे। इसलिए अंग्रेजों से लड़ने की ज़रूरत नहीं है।'

वह आगे कहते हैं, 'अंग्रेज अभी बनिया हैं, उनका ध्यान धन कमाने पर है, राज्य शासन का भार नहीं लेना चाहते। इस संतान विद्रोह के कारण वे शासन का भार लेने को मजबूर होंगे क्योंकि बिना राज्य शासन के धन कमाना संभव न होगा। अंग्रेज राज्याभिषिक्त हों, इसलिए यह संतान विद्रोह हुआ। वह सत्यानंद को उनकी भूमिका के लिए शाबासी देते हुए कहते हैं, 'तुम्हारा व्रत पूरा हुआ। तुमने मां का मंगल किया, अंग्रेजों का राज्य ले आया। अब लड़ाई-झगड़ा छोड़ो, लोग खेती-बारी में लगें, धरती अनाज से भरी-पूरी हो, लोग खुशहाल और उन्नत हों।'

ऊपर के सारे उद्धरण एक पात्र के मुंह से कहलवाए गए हैं, लेकिन वे लेखक की ही टिप्पणियां हैं, इसका सबूत पुस्तक में ही अन्यत्र भी दिखता है। बंकिम बाबू ने एक स्थान पर लेखकीय वक्तव्य देते हुए लिखा है, 'संतानों को यह पता न था कि अंग्रेज भारत का उद्धार करने आए हैं। पता भी कैसे होता? समसामयिक अंग्रेज भी उस समय यह नहीं जानते थे। उस समय यह बात सिर्फ विधाता के मन में थी।'

'आनंद मठ' में जहां अंग्रेजों और अंग्रेजी शासन की मुक्तकंठ से प्रशंसा की गई है, वहीं मुसलमानों के

प्रति घृणा भी साफ झलकती है। इसी कारण इस उपन्यास को सांप्रदायिक कहा गया। देखने में आता है कि उपन्यास के पात्रों को यदि अंग्रेजों से कोई शिकायत है तो सिर्फ यह कि हिंदुओं और मुसलमानों के झगड़े में वे मुसलमान राजा का साथ क्यों दे रहे हैं? इस संवाद पर गौर कीजिए - शांति कहती है कसान टॉमस से - 'मारपीट हिंदू-मुसलमानों में चल रही है। तुम लोग बीच में कैसे टपक पड़े? लौट जाओ।'

इसी कसान टॉमस से एक और संन्यासी भवानंद कहता है, 'कसान साहब, मैं तुम्हारी जान नहीं लूंगा। अंग्रेज हमारे दुश्मन नहीं हैं। तुम इन मुसलमानों की मदद में क्यों आए? मैं तुम्हें जान की भीख देता हूँ, तुम बंदी हो। अंग्रेजों की जय हो, हम तुम्हारे सुहृद हैं।' बंकिम चंद्र ने भवानंद के मुंह से अंग्रेज सैनिकों की तारीफ भी कराई है। भवानंद एक स्थान पर अंग्रेज और मुस्लिम सैनिक में फर्क करते हुए बताता है, 'अंग्रेज जान जाने पर भी भाग नहीं सकता और मुसलमान को पसीन आया नहीं कि भागा - शरबत खोजता फिरेगा। ज़ोप का एक गोला देखकर मुसलमानों की पूरी जमात भाग जाएगी, जबकि तोपों की भीड़ देखकर कोई एक अंग्रेज भी नहीं भागेगा।'

संन्यासियों का मुस्लिम द्वेष उपन्यास में जगह-जगह झलकता है। सत्यानंद एक स्थान पर कहता है, 'हम राज्य नहीं चाहते। चूंकि मुसलमान धर्म-विद्वेषी हैं, इसलिए उनका विनाश चाहते हैं।' लड़ाई के दौरान उन्होंने इसे सच भी करके दिखाया। कुछ अंश देखिए - 'वे गांवों में जाते। हिंदुओं से कहते, विष्णु पूजा करो? और कुछ लोगों को इकट्ठा करके मुसलमानों के घरों को आग लगा देते। वे बेचारे जान बचाने की फिक्र में लग जाते, इधर संतानगण उनका सबकुछ लूटकर नए विष्णुभक्तों को बांट देते। लोग लूट का हिस्सा पाकर खुश होते तो वे उन्हें मंदिर में ले जाते। भगवान का चरण छुआकर संतान बनाते। ज़कोई कहने लगा, भाई, वह दिन भी आएगा जब मस्जिद तोड़कर राधा-माधव का मंदिर बनाएंगे।'

संतान जब जीत गए, तो विजयोन्माद में क्या-क्या करने लगे, इसका हाल लेखक ने इस तरह बयान किया है - 'उस रात हरिनाम की गूंज से वह भूमि भर गई। ज कुछ संतान गांव या शहर की तरफ दौड़े और रास्ते में जो भी राही या गृहस्थ मिलते, उनसे कहने लगे, कहो वंदे मातरम। नहीं कहोगे तो जान से मार डालेंगे। कोई हलवाई की दुकान लूटकर खाने लगे, तो कोई ग्वाले के घर-घुसकर दूध-दही के मटके में मुंह लगाने लगे। कहने लगे, हम सब ब्रजगोप आए हैं, गोपियां कहाँ हैं? गांव-गांव, नगर-नगर में कोलाहल मच गया।' बंकिम चंद्र इस आतंक राज के समर्थक नहीं लगते। वे मीर जाफर के शासन के खिलाफ हुए सशस्त्र संग्राम का पक्ष तो लेते हैं, लेकिन कहीं यह नहीं कहते कि मुसलमानों पर हुआ अत्याचार ठीक था। मुसलमानों पर हिंदुओं के गुस्से का कारण भी वह मीर जाफर के कुशासन को ही देते हुए लिखते हैं - 'मुसलमानों से लोग जी से बिगड़े हुए थे क्योंकि अराजकता थी, शासन ठीक नहीं था। हमले के शिकार मुसलमानों के लिए भी उन्होंने 'बेचारे' शब्द का प्रयोग किया है। बल्कि लड़ाई में विजय के बाद दिव्यपुरुष के मुंह से वे यह कहलवाते हैं, 'सत्यानंद, तुमने दस्युवृत्ति द्वारा धन संग्रह करके लड़ाई जीती है। पाप का फल कभी पवित्र नहीं होता। इसलिए तुम देश का उद्धार नहीं कर सकते।'

अब बंकिम ने 'आनंद मठ' में अंग्रेजों का समर्थन क्यों किया, इस पर हम नहीं जाएंगे। वे स्वयं अंग्रेजी शासन में बड़े अधिकारी थे, इसलिए यह स्वाभाविक है। लेकिन अंग्रेजी शासन समर्थक इस उपन्यास के इस हिंदू गीत को राष्ट्रगान आखिर कैसे बनाया जा सकता है?

सरकार की अपील

-हरे प्रकाश उपाध्याय

राज्य संकट में है
खाना कम खाएं
हो सके तो भूखे रह जाएं
कृपया अन्न -जल के लिए
शोर न मचाएं

कम खाने से स्वस्थ रहेंगे
बीमार कम पड़ेंगे
अस्पतालों के चक्कर नहीं लगेंगे

किसान खेतों में उर्वरक न डालें
उर्वरक संकट से देश बचा लें
देशभक्ति के पानी से
अपनी फसलें उगा लें

हम विश्व गुरु हैं
चाहें तो क्या नहीं कर सकते हैं

पेट्रोल बचाएं डीजल बचाएं
गैस पर खाना न बनाएं
बहुत ज़रूरी हो
तो ही घर से निकलें
घर पर ही कुछ करें

बाहर काम पर न जाएं

बाहर वैसे भी नहीं बचा है कोई काम
प्रिय नागरिको आप लोग
देख लें अपना - अपना इंतजाम
आत्मनिर्भरता है हमारा मुकाम

सोना न खरीदें
चांदी से काम चलाएं
देश के लिए अपना प्रेम दिखाएं
अपना कर्तव्य निभाएं

नहीं मांगिये कोई अधिकार
विनम्रता से कह रही सरकार
मंत्रिमंडल का हो रहा विस्तार
लोकसभा में सीटें होंगी आठ सौ पार
अभी निपटा है चुनाव
फिर शुरू होगा चुनाव प्रचार
शांति से रहिए
वोट डालिएगा अगली बार

देश प्रेम में बोलिए जै श्रीराम
कुछ दिन धीरज धारिये
होंगे खतम दुख तमाम!